परवरिश एवं परिवार

अमन कुमार आकाश

पी-एच. डी. हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय

आलेख की शुरुआत एक सूक्ति से करते हैं – 'आपके संस्कार बताते हैं कि आपकी परवरिश कैसी है, आपकी परवरिश बताती है कि आपका परिवार कैसा है।' इन दो पंक्तियों में पूरे आलेख का सार निहित है । यूनिसेफ के अनुसार अभिभावक बच्चों के विकास को सही दिशा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । जैसे-जैसे बच्चा किशोरावस्था की ओर कदम बढ़ाता है, अभिभावक को पेरेंटिंग में बच्चे की ज़रूरतों के हिसाब से रणनीतियां बनानी होती हैं । इसको हम पतंग उड़ाने के उदाहरण से सीख सकते हैं । पतंग को कब कितनी ढील दी जाए कि वो आसमान की ऊँचाइयों में उड़ती रहे और कब उसको समेट लिया जाए कि पतंग कटकर ना गिर जाए । किशोरावस्था की पेरेंटिंग पतंग उड़ाने जैसी ही है । अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जी. स्टेनले हॉल के अनुसार- किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान तथा विरोध की अवस्था है । शारीरिक परिवर्तन, मन-मस्तिष्क में भावनाओं का आवेग, हार्मोनल बदलाव इत्यादि बहुत-सी ऐसी परिस्थितियां है जो किशोर मन को प्रभावित करती हैं । किशोरावस्था की प्रमुख विशेषताओं के संबंध में मनोवैज्ञानिक जेनेत बिग तथा हण्ट ने लिखा है "किशोरावस्था की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करने वाला एक शब्द है- 'परिवर्तन'। यह परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक होता है । परिवर्तन के इस संक्रमण काल में अभिभावक का मित्रनुमा व्यवहार ही किशोर/किशोरियों को पथभ्रमित होने से बचा सकता है । किशोरावस्था के इस पड़ाव में हम अपने हर फैसले को सही मानते हैं और हमारे अभिभावक हमें रुढ़िवादी या संकीर्ण मानसिकता के लगते हैं । ऐसी स्थिति हर आदमी की ज़िन्दगी में कभी-न-कभी आती है, बेहतर है कि ऐसे समय में किशोर अभिभावकों की बात को समझें और अभिभावक भी बच्चों की मनोदशा को समझते हुए उन पर बेवज़ह बोझ ना डालें । यहाँ पर पुनः एक उदाहरण दे रहा हूँ । इरफ़ान अभिनीत कारवाँ फिल्म का एक डायलाग है-जब तक एक बेटे को रियलाइज होता है कि उसका बाप सही था; उसका खुद का एक बेटा होता है जो समझता है कि वो गलत है ।

बच्चों में प्राथमिक समाजीकरण की नींव अभिभावक ही डालते हैं । बच्चों की हर ज़रूरतों को पूरा करना, बेहतर से बेहतर स्कूल में एडमिशन करवा देना भर ही अच्छी पेरेंटिंग का उदाहरण नहीं है, माँ-पिता के एक दूसरे के प्रति व्यवहार, अन्य रिश्तों के प्रति उनका व्यवहार, परिवार के प्रति रुझान, उनकी धार्मिक आस्था बहुत से ऐसे तत्त्व है जो बच्चे में समाजीकरण की नींव डालते हैं । यहाँ जॉन लॉक के टेबुला रसा थ्योरी को उद्धृत करते हुए कहा जा सकता है कि बच्चों का मस्तिष्क कोरे कागज जैसा होता है, वह अपने घर में जो देखता है, वही सीखता है और बाद में यही उसका आचरण बन जाता है ।

मेरा जन्म बिहार के एक सूदूर देहात में निम्न मध्यमवर्गीय शिक्षित परिवार में हुआ है । पिताजी उस समय साधारण काम-धंधों में लगे थे और माताजी गृहिणी थीं । हाँ, बचपन की यादों में माता-पिता दोनों के स्नेह की तस्वीरें उभरती हैं । बिहार जैसा राज्य जहाँ शिक्षा और रोजगार के लिए सबसे ज्यादा पलायन है, हर बच्चे को यह सम्मिलित स्नेह नहीं मिल पाता । किशोरावस्था के बहुत से ऐसे संस्मरण हैं, जिनको याद करने पर आज अहसास होता है कि हमारे पेरेंट्स ने कितने संतुलित तरीके से हमें संभाला है । हम पर अपनी आकांक्षाओं का बेवज़ह बोझ नहीं डाला और ना ही हमारे निर्णय को कभी प्रभावित किया । 90 के दशक में जन्मे हम बच्चों के लिए 2008 से 2015 किशोरावस्था की उम्र थी । ग्रामीण इलाकों के हम बच्चों के पास मोबाइल, विडियो गेम्स, मीडिया आदि की पहुँच ज्यादा नहीं थी या यूँ कहें कि न के बराबर थी । हमारे लिए मनोरंजन के माध्यमों में मेला-रामलीला, कॉमिक्स पढ़ना, खेत-खलिहानों में भटकना, भाड़े पर टीवी लाकर फ़िल्में देखना इत्यादि हुआ करता था । इन सब चीजों के लिए कई जगह वाजिब रोक-टोक के अलावे अभिभावकों ने कभी अनावश्यक सख्ती नहीं बरती । यही कारण रहा है कि हमारे स्वभाव में उन्मुक्तता आयी, दब्बूपन नहीं आया । इसके लिए अभिभावकों का हमेशा शुक्रगुजार हूँ ।

मुझे याद है, छठी कक्षा में था, गाँव के मेले से पांच रुपये की व्यस्क किताब 'मर्लिन मुनरो के सात प्रेमी' खरीदकर लाया । किताब को बड़ी उत्सुकता से अपनी पाठ्यपुस्तक में छुपाकर पढ़ रहा था । पापा समझ गए कि कुछ तो गड़बड़ कर रहा हूँ । दो-तीन बार वहां आसपास देखकर वो एकबार अकस्मात आए और पूछ बैठे – दिखाओ क्या पढ़ रहे हो ? मुझे काटो तो खून नहीं । लगा कि आज तो मार पड़ेगी ही । लेकिन पापा ने किताब का शीर्षक देखा और कहा – अभी तुम्हारी यह सब पढ़ने की उम्र नहीं है । जब उमर हो जाएगी तब पढ़ना । अगर पापा उस दिन इस हरक़त के लिए मारते या दंडित करते तो अन्य-अन्य विषयों पर किताबें पढ़ने की इच्छा वहीं दम तोड़ देती और स्वभाव में ज़िद्दीपना भी आ सकता था ।

पढ़ाई को लेकर सख्ती ज़रूर बरती लेकिन विषय चयन में कभी उनका हस्तक्षेप नहीं रहा । आम भारतीय पिता की तरह वो भी चाहते थे कि विज्ञान विषय लेकर आगे की पढ़ाई करूं । बारहवीं में मैंने विज्ञान लिया भी । ग्यारहवीं-बारहवीं की कोचिंग पटना से हुई । विज्ञान के प्रति मेरा रुझान बन नहीं पाया । छह महीने विज्ञान की कोचिंग करके मैं रंगमंच से जुड़ता चला गया । पापा ने इस फैसले पर भी ज्यादा हस्तक्षेप नहीं किया । मेरे करियर को लेकर वो चिंतित तो थे लेकिन उन्हें मुझपर भरोसा था । दो साल रंगमंच करते-करते बारहवीं भी प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर गया । प्राप्त नंबर को लेकर पापा थोड़े नाराज़ तो थे लेकिन मेरी मेहनत के हिसाब से उतने नंबर पर्याप्त थे । अब सामने खड़ी थी स्नातक की दीवार । यहाँ विषय का चयन बड़ी सावधानी से करना था ।

व्यक्तिगत तौर पर मुझे लगता है विद्यार्थियों को विषय या करियर के चयन के लिए ना तो किसी का मुंह का ताकना चाहिए और ना ही किसी से प्रभावित होना चाहिए । यहाँ अभिभावकों को भी यह पूरा ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे की क्षमता क्या है, अपने निर्णयों को बच्चों पर थोपना कतई जायज नहीं । ग्रेजुएशन के लिए मैंने मास कम्युनिकेशन को विषय के रूप में चुना । देश के प्रतिष्ठित दिल्ली विश्वविद्यालय में नामांकन मिलने के बाद पापा पूरी तरह निश्चिंत हो गए । अब मैंने पूर्ण रूप से अपना घर, अपना गृह राज्य छोड़ दिया । उम्र भी महज सोलह-सत्रह साल थी । इसके बाद के हर फैसले खुद से लिए, पापा के टेलीफोन से मानसिक और आर्थिक संबल मिलता रहा । कभी उन्होंने ना कहीं जाने का कारण पूछा और ना कभी किसी खर्चे की वज़ह । एक अभिभावक के तौर पर पापा हमेशा मेरे साथ खड़े रहे । कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से । आज मास कम्युनिकेशन से उच्चतर शिक्षा हासिल कर पा रहा हूँ तो इसके पीछे पूरा योगदान अभिभावकों का है । मम्मी-पापा ने आर्थिक मोर्चे पर घर को संभाले रखा और मेरी पढ़ाई में किसी तरह की बाधा नहीं आने दी । कोरोनाकाल में हुए लॉकडाउन में घर की अर्थव्यवस्था थोड़ी गड़बड़ाई भी तो अभिभावकों ने नौकरी के लिए बाध्य नहीं किया । कभी-कभी यह अहसास भी होता था कि मेरे आसपास के लोग, मेरे दोस्तों ने अपने-अपने घर को संभाल लिया है और मैं अपनी पढ़ाई में ही लगा हूँ । कई बार नैराश्य का भाव हावी हो जाता था लेकिन अभिभावकों ने ही हर कदम पर प्रोत्साहित किया । वास्तव में भारत में उच्च शिक्षा ग्रहण करने हेतु जितना धैर्य छात्रों में चाहिए, अभिभावकों को भी मानसिक रूप से उतना ही मजबूत बनना पड़ता है ।

वेब सीरिज 'कोटा फैक्ट्री' के एक संवाद की बरबस याद आ गई कि 'माँ-बाप के फैसले भले गलत हों, लेकिन उनकी नीयत कभी बुरी नहीं होती । निम्न मध्यमवर्गीय या मध्यमवर्गीय परिवार की, अभिभावकों की अपनी सीमाएं होती हैं । अमेरिकन अकैडमी ऑफ़ चाइल्ड एंड एडोलसेंट साइकाइट्री के अनुसार स्वच्छंदता के लिए किशोर/किशोरियों का आंदोलन माता-पिता और परिवारों के लिए तनाव और दुःख का कारण बन सकता है । कई बार गलतियां आजीवन अवसाद का कारण बन सकती हैं । किशोर/किशोरियों को 'पापा मेरे सुपरमैन' और 'माय फादर इज माय एटीएम' जैसी सोच से बाहर निकलना होगा । अभिभावकों को भगवान् के दर्जे से थोड़ा नीचे रखकर उन्हें एक मनुष्य के रूप में देखें तो गलतियां उनसे भी हो सकती हैं, उनके लिए फैसले भी कमज़ोर साबित हो सकते हैं । हम चाहते हैं कि अभिभावक हमारे फैसलों में दखलअंदाजी ना करें तो हमें भी उनके किसी फैसले के पीछे की नीयत को समझने का प्रयास करना चाहिए । अपने अभिभावकों और पेरेंटिंग को लेकर यह मेरे व्यक्तिगत अनुभव हैं । आपका या मेरी ही बहनों का अनुभव मेरे से सर्वथा भिन्न हो सकता है ।

संदर्भ

https://www।unicef।org/reports/parenting adolescents#:~:text=Parents%20play%20an%20essential%20role,to%20meet%20their%20children's%20needs.

Arnett, J. J. (1999). Adolescent storm and stress, reconsidered. *American psychologist*, *54*(5), 317.

Emmons, C. L. (1996). Translating theory into practice: Comer's theory of school reform. *Rallying the whole village*, 27-41.

Kaur, J. *Parental Support and Study Habits Among Adolescents.*

Duschinsky, R. (2012). Tabula rasa and human nature. *Philosophy*, *87*(4), 509-529.

https://www.aacap.org/AACAP/Families_and_Youth/Facts_for_Families/FFF-Guide/Parenting-Preparing-For-Adolescence-056.aspx